कागज़ी आजादी और गुलामी की जड़ें

देवेंद्र पाल

राष्ट्रपति भवन से इंडिया गेट तक जाती सड़क का नाम था -'राजपथ'। इसको बदलकर अब इसका नाम 'कर्तव्य पथ' रख दिया गया है। बात इतनी सी है कि प्रत्येक वर्ष गणतंत्र दिवस के अवसर पर राजपथ पर जो परेड हुआ करती थी, वह अब 'कर्तव्य पथ' हुआ करेगी। ब्रिटिश राज के दौरान इसे 'किंग्सवे' कहा जाता था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इसे 'कर्तव्य पथ' का नाम देकर दावा किया है कि उन्होंने गुलामी के एक बड़े प्रतीक को खत्म कर दिया है। खुशी से 'टल्ली' कुछ विद्वानों का मानना है कि यह काम तो 15 अगस्त 1947 वाले दिन ही कर देना चाहिए था।

कुछ अतिउत्साही विद्वान 'इंडिया गेट' और कुछ 'गेटवे ऑफ इंडिया' और कुछ उनसे भी आगे जाकर हावड़ा ब्रिज की बारी का भी इंतज़ार रहे हैं। हमारे भाई अभय कुमार दुबे चाहते हैं कि 'डबल माल्ट' को हिन्दी की भट्ठी में ही बनाया जाना चाहिए क्योंकि अँग्रेजी गुलामी की असली जड़ है। इसके साथ-साथ बौद्धिक जगत में गुलामी और आज़ादी से जुड़े कुछ गंभीर प्रश्न भी विमर्श के केंद्र में आ गए हैं। उनमें एक अहम सवाल यह है कि गुलामी के प्रतीक तो टूट रहे हैं, लेकिन असल गुलामी का जो आदमखोर वृक्ष हमने काट गिराया था उसकी जड़ें फिर एक बार कैसे पुनर्जीवित हो गयी हैं?

शहरों और सड़कों के नाम इससे पहले भी बदले जाते रहे हैं। ऐसे कार्यों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव आम आदमी की भ्रांत चेतना पर पड़ता ही है और इसकी वजह से आम आदमी का खुश होना और उसके झंडामुखी राष्ट्रवाद का नाचना स्वाभाविक है। यह झंडामुखी राष्ट्रवाद है, जो सर्वसत्तावादी शासकों के लिए एक आज्ञापालक समाज खड़ा करने में सहायक होता है और यही आज्ञापालक समाज सत्ता के सभी जनविरोधी कार्यों को वैधता प्रदान करता है। पिछड़ी मानसिकता और हिंसक व्यवहार वाला यह समाज वैज्ञानिक यथार्थ से आंखें चुराता है और एक ऐसे संसार में खुश रहता है जहां अज्ञान ही आनंद है।

फ्रांसीसी दार्शनिक मिशेल फूको के अनुसार, "मनुष्य तर्कसंगत रूप से नहीं सोचता है और जीवन की बहुविध प्रक्रियाओं के मामले में संप्रभु नहीं होता। लोगों के विचार ऐसे नियमों या स्थायी संरचनाओं से तय होते हैं जिनके बारे में उन्हें खुद को भी पता नहीं होता।" फूको बड़े ही मजाकिया अंदाज में कहते हैं कि "मनुष्य की समूची अवधारणा ही हाल-फिलहाल का आविष्कार है। और यह चीजों के एक खास व्यवस्था पर निर्भर करती है। अगर उस व्यवस्था की आधार सामग्री गायब हो जाए, तो हम मनुष्यता के बारे में किसी और ढंग से बात करना शुरू कर देंगे। मेरे ख्याल से व्यंग्य को हमेशा गंभीरता से लिया जाना चाहिए।

नब्बे के दशक से नवउदारवाद और वित्तीय पूंजी का वैश्वीकरण हमारे सामने एक नई तरह की विश्व व्यवस्था लेकर आया है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया ने राष्ट्रीय संप्रभुता को कमजोर करके और विश्व में सत्ता की संरचना पर युगान्तरकारी प्रभाव डाला है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (ईएमएफ), विश्व बैंक, आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) और विश्व व्यापार संगठन इसके मुख्य अधिवक्ता हैं। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का जिक्र आते ही जिस व्यक्ति का नाम सबसे पहले दिमाग में आता है वह है - डेविसन बुधू। बुधू भारतीय मूल के ग्रेनेडियन अर्थशास्त्री हैं। उन्हीं दिनों बुधू ने आईएमएफ से इस्तीफा दिया था, जब नरसिम्हा राव भारत के प्रधान मंत्री थे, और तत्कालीन वित्त मंत्री मनमोहन सिंह और वाणिज्य मंत्री पी. चिदंबरम के साथ नवउदारवादी अर्थव्यवस्था की शुरुआत कर रहे थे।

उन दिनों डेविसन बुधू ने आईएमएफ के अध्यक्ष माइकल केमेडेसस को 'एनफ इज एनफ' शीर्षक के तहत एक सौ पन्नों का त्याग पत्र भेजा था उसमें आईएमएफ़ के संसार और मनुष्यता विरोधी नीतियों के बारे में जो कहा था, उसकी वजह से वह विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष के लोकप्रिय प्रतीक बन गए थे। इस्तीफा देने के बाद पत्रकारों से बात करते हुए बुधू ने कहा कि "गरीब देशों के करोड़ों लोगों का मेरे हाथों पर इतना ज्यादा खून है कि मैं इसे सारी दुनिया का साबुन इस्तेमाल करके भी नहीं धो सकता।"

उन दिनों डेविसन बुधू भारत आए और एक सभा में उनका गर्मजोशी से स्वागत किया गया। बुधू ने उस दिन अपने विचार रखते हुए कहा- "यदि आप आईएमएफ और विश्व बैंक को ठुकरा कर यानि विश्व पूंजीवादी व्यवस्था से खुद को काटकर अपनी अर्थव्यवस्था बनाना चाहते हैं, तो

आपको एक नई क्रांति करनी होगी।" एक सामाजिक-राजनीतिक क्रांति, जो लोगों की सांस्कृतिक सोच से जुड़ी हो। उसे एक अलग तरह की जीवन शैली के लिए दिमागी तौर पर तैयार करती हो। पर फिलहाल आपके देश में ऐसी क्रांति की कोई गुंजाइश नहीं है।" तीनों प्रकार की क्रांतिकारी विचारधाराओं के लोग, गांधीवादी , समाजवादी और मार्क्सवादी-लेनिनवादी, सभा में बैठे थे। जवाब किसी को नहीं सूझा। सच पूछें तो लगभग तीन दशक पहले जो बुधू ने कहा था उसका कोई जवाब किसी दल/नेता के पास आज भी नहीं है और न ही किसी दल/नेता के पास इस आर्थिक नीति का कोई विकल्प है।

इस नई अर्थव्यवस्था ने एक ऐसे बाजारोन्मुखी लोकतंत्र का निर्माण किया, जिसने न केवल भारत की अनूठी राष्ट्र-राज्य संरचना में दरारें पैदा करके संघीय ढांचे को कमजोर किया, बल्कि राष्ट्रीय संप्रभुता (National Sovereignty) भी घुटनों के बल खड़ी दिखाई देती है। अमेरिका ने आर्थिक सत्ता इस नए ढांचे के खिलाफ विद्रोह करने वाले देशों को अनुशासित करने के लिए सुपर 301 जैसे कानूनों का इस्तेमाल किया। भारत और थाईलैंड जैसे देशों पर अपने अपने पेटेंट कानूनों को बदलने के लिए दबाव डाला गया था ताकि प्राकृतिक संसाधनों को वैश्वीकरण के दायरे में लाया जा सके। ये बातें अब किसी से छिपी नहीं हैं कि उसके बाद जंगलों और पहाड़ों की लूट इतनी तेजी से शुरू हुई कि करोड़ों आदिवासियों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया।

कुछ आदिवासियों ने आत्मरक्षा के लिए हथियार उठा लिए हैं। अब चाहे वह भाजपा की हो, सीपीएम की हो या कांग्रेस की, हरेक सरकार को देसी-विदेशी कंपनियों को बेचने के लिए ये जंगल-पहाड़ चाहिए और इसके लिए वे 'विकास' में बाधा बन रहे आदिवासियों को वहाँ से मिटा देने के लिए सैकड़ों सुरक्षा बलों का इस्तेमाल कर रहे हैं। जिसने भी इन आदिवासियों के लिए आवाज उठाई, उसे मोदी सरकार ने माओवादी कह कर जेल में डाल दिया है। 84 वर्षीय फादर स्टेन स्वामी की तो जेल में मृत्यु हो गई। अभी पिछले दिनों 2009 में सुरक्षा बलों द्वारा मारे गए 27 निर्दोष आदिवासियों की मौत की जांच के लिए गांधीवादी कार्यकर्ता हिमांशु कुमार की याचिका को खारिज करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने हिमांशु कुमार को ही सजा के साथ 5 लाख रुपये का जुर्माना लगा दिया है। आज़ादी और दासता की अवधारणा को बारास्ता जंगल भी समझा जा सकता है ।

यह नई अर्थव्यवस्था को बुलेट ट्रेन और राफेल पर सवारी करना पसंद करती है, लेकिन इसे धार्मिक और रूढ़िवादी मूल्यों पर की गई राजनीतिक घेरेबंदी अधिक सुहाती है। यही कारण है कि ट्रम्प, अर्दोआन और मोदी जैसे नेता जो पूरी दुनिया में नफरत की राजनीति कर रहे हैं, उन्होंने तेजी से लोकप्रियता हासिल की है और सहजीवी समाजों के पारंपरिक ढांचे टूट रहे हैं और एक नए क़िस्म की 'आध्यात्मिक आज़ादी' वाली सूक्ष्म दासता जन्म ले रही है। इस दासता को बाज़ार के समर्थक बुद्धिजीवी आर्थिक रूप से सक्षम संस्था के रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल हो गए हैं। इस काम पर शोध के लिए 1993 का नोबेल पुरस्कार आर्थिक इतिहासकार रॉबर्ट डब्ल्यू फ़ॉजेल को दिया गया था।

इस नई साम्राज्यवादी व्यवस्था ने अदृश्य गुलामी के जाल में मनुष्य की सोच और सपनों को सोशल मीडिया के माध्यम से नियंत्रित कर लिया है। बंदा क्या सोच रहा है, कहाँ जा रहा है, क्या खा रहा है, क्या पढ़ रहा है, उसकी पसंद-नापसंद, वैचारिक झुकाव के बारे में उसे खुद अपने बारे में नहीं पता जितना गूगल, फेसबुक, ट्विटर आदि कंपनियों को पता है। हरेक देश का नागरिक एक डेटा बन कर रह गया है, जिसे 'मुक्त बाज़ार' में खरीदा-बेचा जा रहा है। पेगासास के माध्यम से निगरानी रखी जा रही है।

जो नियंत्रित नहीं किए जा सकते जेलों में बंद हैं या मार दिये गए हैं। बुलडोज़र की ड्राइविंग सीट पर कानून बैठा है। जस्टिस लोया की हत्या के बाद अदालतें भी सहमी हुई हैं। मीडिया समेत लोकतंत्र के चारों स्तम्भ ध्वस्त हो गए हैं। अगर आपको अभी भी लगता है कि आप आज़ाद हैं, तो 'कर्तव्य पाठ' चलते रहे, आपके लिए दुआ की जा सकती है।

मुझे तो दूर कहीं से बाबा नागार्जुन की आवाज़ सुनाई दे रही है- कागज़ की आज़ादी मिलती, ले लो दो-दो आने में....

बीते 1 साल में साबुन-डिटर्जेंट की कीमतों में 40 से 70 फीसदी तक वृद्धि, जरूरी खाद्य पदार्थ भी हुए महंगे

वर्ष 2021-22 में साबुन/ डिटर्जेंट की कीमतों में 40 से 70त्न की वृद्धि हुई है, फल, सब्जी, खाद्य, तेलों की मुल्यवृधि भी लगभग 60-70 फीसदी तक है, दिल की तसल्ली के लिये कह सकते हैं कि अभूतपूर्व विकास हो रहा है...

सरकार और रिजर्व बैंक के प्रयासों के बावजूद आम लोगों को महंगाई से राहत नहीं मिल पा रही है। सरकार भले ही महंगाई कम करने के कितने दावे करें लेकिन सच्चाई तो यह है कि महंगाई दुगनी रफ्तार से बढ़ती ही जा रही है। रिटेल एनालिटिक्स प्लेटफॉर्म बिजोम के अनुसार इस साल जनवरी से अब तक रोजाना इस्तेमाल होने वाले किराना सामान के दाम 10त्न से 22त्न तक बढ़े हैं। इसमें खाद्य तेल, मसाले और चावल से लेकर बालों में लगाने वाले तेल तक शामिल हैं। वैसे साबुन और वॉशिंग पाउडर (डिटर्जेंट) जैसी कुछ गैर-खाद्य वस्तुओं के दाम सिर्फ 1-3त्न ही बढ़े हैं।

बीते 1 साल में 70 फीसदी बढ़ी महंगाई

देविन्दर शर्मा के पोस्ट के अनुसार वर्ष 2021-22 में साबुन/ डिटर्जेंट की कीमतों में 40 से 70 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। फल, सब्जी, खाद्य, तेलों की मुल्यवृधि भी लगभग 60,70 फीसदी तक है। दिल की तसल्ली के लिये कह सकते हैं कि अभूतपूर्व विकास हो रहा है।

बता दें कि पियर्स साबुन 140 से 252 रुपए, डव साबुन 165 से 280 रुपए, लक्स साबुन 110 से 198 रुपए, विम लिक्विड 132 से 199 रुपए, हार्पिक 140 से 195 रुपए, सर्फ एक्सेल 104 से 134 रुपए, डिटॉल साबुन 189 से 322 रूपए बढ़ गए है।

केंद्र सरकार के कारण लगातार महंगाई बढ़ती जा रही है और हम खाद्य पदार्थों के दाम बढ़ने पर किसानों को दोष देते हैं।

मसालों की कीमतों में भी 17 प्रतिशत वृद्धि

बता दें कि साल की पहली तिमाही में करीब 35 प्रतिशत बढ़ने के बाद खाद्य तेल की कीमतें लगातार की हुईं, लेकिन जनवरी के मुकाबले ये अब भी 5-22 प्रतिशत महंगे हैं। इस बीच मसालों की कीमतें भी 3-17 प्रतिशत बढ़ी हैं। यह स्थिति तब है, जब भारत दुनिया के सबसे बड़े मसाला निर्यातकों में शुमार है।

जरूरी किराना सामान के दामों में 10 प्रतिशत वृद्धि

यही नहीं, इस साल अब तक चावल, आटा और रिफाइंड फ्लोर जैसे ब्रांडेड जरूरी किराना सामान के दाम भी 10 प्रतिशत से ज्यादा बढ़े हैं। बिजोम की रिपोर्ट में कहा गया है कि कीमतें बढ़ने का असर किराना सामान की बिक्री पर हो रहा है। खास तौर पर ग्रामीण इलाकों में इनकी बिक्री घटी है, जिसके चलते बाजार की ग्रोथ धीमी पड़ती जा रही है।